Shikshan Sanshodhan : Journal of Arts, Humanities and Social Sciences ISSN(o): 2581-6241
Monthly, Peer-Reviewed, Refereed, Indexed Journal Impact Factor: 6.471
Volume - 6, Issue - 6, June - 2023 Publication Date: 30/06/2023

DOIs:10.2018/SS/202306010 --:-- Research Paper / Article / Review

आधुनिक कृषि का पर्यावरण पर प्रभाव

डॉ. विनोद कुमार सैनी
सहायक आचार्य भूगोल
मु. बड़ी ढाणी, (सिमारला रोड), पोस्ट-थोई, जिला-सीकर (राजस्थान) 332719
Email - vinod.saini42@gmail.com

शोध सारांश : मनुष्य ने आधुनिक वैज्ञानिक तकनीक में विकास, उन्नत प्रौद्यौगिकी, उन्नत उत्पादन वाले बीजों, रासायनिक खादों के उत्पादन तथा उपभोग में वद्धि तथा विस्तार आदि के माध्यम से कृषि में पर्याप्त विस्तार एवं विकास किया है तथा निरन्तर मानव जनसंख्या के कारण बढ़ती खाद्यान्नों की माँग की पूर्ति तो कर दी है, परन्तु साथ ही साथ घातक पर्यावरणीय समस्याओं को भी जन्म दिया है । बढ़ती मानव जनसंख्या को ध्यान में रखते हुए कृषि के विस्तार एवं विकास की रफ्तार को निश्चय ही कायम रखना है । परन्तु साथ ही यह भी देखना होगा कि कृषि विकास कही बढ़ती रफ्तार के कारण पर्यावरण अवनयन भयावह समस्या का रूप न धारण कर लें स्पष्ट है कि आधुनिक आर्थिक एवं प्रौद्योगिकी मानव उस चौराहे पर खड़ा है जिसके चारों ओर खतरा ही खतरा है। यदि जनसंख्या में विस्तार जारी रहता है तो हमें कृषि में विस्तार एवं वृद्धि करनी ही होगी ताकि भूखे पेटों को भरने के लिए कृषि उत्पादन में वृद्धि की जा सके । परन्तु ऐसा करते समय हमें अपने विनाश के लिए अपने ही द्वारा निर्मित समय से निपटने के लिए तैयार रहना पड़ेगा ।

संकेतक शब्द : प्रौद्यौगिकी, पर्यावरण, कृषि, पारिस्थितिकी, रासायनिक, कीटनाशक ।

1. प्रस्तावना :

कृषि भूमि में भावी विस्तार वनों के सफाया द्वारा ही संभव हो सकता है । इस तरह वन क्षेत्रों के कृषि क्षेत्रों में रूपान्तर के कारण कई श्रृंखलाबद्ध पर्यावरणीय समस्यायें उत्पन्न हो जाती हैं । वन विनाश द्वारा मृदा अपरदन में वृद्धि होती है । जिस कारण उर्वर मिट्टी का क्षय होता है एवं मिट्टी की उत्पादकता में हास होता है । मृदा अपरदन द्वारा नदियों में अवसाद भार बढ़ जाता है जिस कारण नदियों का तल ऊपर उठता है । इस कारण नदियों की घाटियों में अवसादों के निक्षेपण से नदियों की जल धारण की क्षमता में कमी होती है जिस कारण नदियों के बाढ़ क्षेत्र से मैदानों में फसलों को अपपुर क्षति होती है । सोवियत रूस के स्टेपी, संयुक्त राज्य अमेरिका तथा कनाडा के प्रेयरी, दक्षिणी अमेरिका के पम्पाज, दक्षिणी अफ्रीका के वेल्ड तथा न्यूजीलैण्ड के डाउन्स शीतोष्ण घास क्षेत्रों को व्यापक स्तर पर साफ करके कृषि क्षेत्रों में बदला गया है । इस प्रक्रिया द्वारा मानव समाज का यद्यपि पर्याप्त कल्याण हुआ है । जैसे कृषि उत्पादों खासकर खाद्यान्न के उत्पादन में अत्यधिक वृद्धि होने से विश्व में खाद्यान्न की आपूर्ति में बढ़ोतरी हुई है ।

2. शोध अध्ययन के उदेद्श्य :

1. आधुनिक कृषि का अध्ययन करना ।
2. आधुनिक कृषि का पर्यावरण पर प्रभाव का अध्ययन करना ।
3. रासायनिक खाद एवं कीटनाशक का विपरीत प्रभाव का अध्ययन करना ।
4. आधुनिकीकरण की वजह से पर्यावरणीय एवं पारिस्थितिकी की समस्या का अध्ययन करना ।

3. शोध विधि व आंकड़ों का संग्रहण :

आधुनिक कृषि का पर्यावरण पर प्रभाव का विश्लेषण करने के लिए प्राथमिक और द्वितीयक आंकडों का प्रयोग किया गया है । आंकडों को विभिन्न पुस्तकों, पत्रपत्रिकाओं- समाचार पत्रों आदि से इकट्ठा किया गया है ।

4. आधुनिक कृषि का पर्यावरण पर प्रभाव :

कृषि में तेजी से विस्तार होने से पर्यावरण में निम्न रूपों में अवनयन होता है-

- खेतों में रासायनिक खादों, कीटनाशकों एवं शाक रासायनों के प्रयोग से ।
- वन विनाश तथा सम्बन्धित भूमि उपयोग में परिवर्तन होने से सिंचाई की सुविधाओं एवं सिंचाई की मात्रा में वृद्धि होने से ।

- जैविक समुदायों में परिवर्तन होने से ।
- रासायनिक खादों की आपूर्ति हेतु खुलने वाले कल कारखानों से ।

मानव जनसंख्या में तीव्र वृद्धि के कारण खाद्यान्नों की माँग में तेजी से वृद्धि हो रही है । इस समस्या का समाधान निम्नलिखित रूपों में हो सकता है

1. कृषि क्षेत्रों में विस्तार तथा,
2. कृषि भूमि की उत्पादकता में वृद्धि ।

परन्तु साथ ही साथ इन क्षेत्रों में पारिस्थितिकी संतुलन में अव्यवस्था भी उत्पन्न हुई है । इन क्षेत्रों में एक धान्य कृषि के कारण जन्तुओं का भारी तादाद में विस्थापन हुआ है तथा कई जन्तु विलुप्त हुए हैं । इसी तरह भूमध्यसागरीय प्रदेशों में वनस्पति साफ करके क्षेत्रों में उद्यान कृषि, अंगूर वाटिका तथा चारागाहों का विस्तार तथा विकास किया गया है जिस कारण एक तरफ तो मौलिक एवं प्राकृतिक बन पारिस्थितिकी क्षेत्र का विनाश हुआ है तो दूसरी तरफ मृदा अपरदन में वृद्धि हुई है। उष्ण एवं उपोष्ण प्रदेशों के कई देशों में स्थानान्तरण कृषि या झूमि कृषि के कारण लाखों वर्ग कि.मी. वन क्षेत्र नष्ट हो चुके है । अकेले भारत में झूमिंग कृषि द्वारा प्रतिवर्ष 10,000 वर्ग कि.मी. बन क्षेत्र का विनाश होता है । आसाम तथा मेघालय के पहाड़ी क्षेत्रों पर बनी को साफ करके आलू की बड़े पैमाने पर खेती की जाती है। इस प्रकार भूमि उपयोग से यद्यपि भारत के उत्तरी पूर्वी पर्वतीय क्षेत्रों में आलू की मांग की आपूर्ति की गई पर मौसम तथा जलवायु सम्बन्धी दशाओं एवं पारिस्थितिकी संतुलन में भारी परिवर्तन हुए हैं ।

भारत के हिमाचल प्रदेश एवं उत्तरांचल के पहाड़ी जिलों में वनों को साफ करके सेब की कृषि के कारण हिमालय के पर्यावरण पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है । ज्ञातव्य है कि हिमाचल प्रदेश में स्वतन्त्रता के बाद सेब की कृषि में तेजी से विस्तार हुआ है । वर्तमान समय में हिमाचल प्रदेश देश के सेब उत्पादन का एक तिहाई भाग उत्पन्न करता है । यद्यपि सेब की कृषि द्वारा हिमाचल - प्रदेश के किसानों की आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ है परन्तु इस प्रकार के भूमि उपयोग द्वारा प्राकृतिक वन क्षेत्रों को भारी नुकसान हुआ है । ज्ञातव्य है कि सेब के पौधे 6 से 7 वर्षों में फल देना आरंभ करते हैं । उस दौरान किसान सेब के बागों के खाली क्षेत्र में आलू की खेती करते है जिस कारण मिट्टी का अपरदन अधिक हो जाता है । सेब की एक न्य कृषि के कारण पारिस्थितिकी संतुलन अव्यवस्थित हो जाता है क्योंकि अधिकांश प्राकृतिक पौधे, जन्तु तथा सूक्ष्म जीव नष्ट हो जाते हैं । उनके आवासों का विनाश हो जाता है । सेब की पैकिंग के लिए पर्याप्त लकड़ी की आवश्यकता होती है । एक अनुमान के अनुसार एक हेक्टेयर सेब के बाग के फलों की पैकिंग के लिए 6 से 7 हेक्टेयर वन क्षेत्र की लकड़ियों की आवश्यकता होती है । सेब में लगने वाले स्कैब रोग के निवास के लिए भारी मात्रा में कीटनाशी रासायनों का प्रयोग किया जाता है । इस जहरीले रसायन के कारण पहाड़ी क्षेत्रों का जल प्रदूषित हो जाता है ।

कृषि की उत्पादकता में वृद्धि के लिए रासायनिक खादों का भारी मात्रा में उपयोग किया जाता है । फसलें समस्त रासायनिक पोषक तत्वों का पूर्ण उपयोग नहीं कर पाती है । इस तरह अप्रयुक्त रासायनों का मिट्टी में लगातार संचय होता रहता है । परिणामस्वरूप रासायनों के अत्यधिक सान्द्रण के कारण मिट्टी का प्रदूषण प्रारंभ हो जाता है । इन रासायनों का कुछ भाग वर्षा के जल के साथ बहकर तालाबों झीलों तथा नदियों तक पहुँच जाता है जिस कारण जल प्रदूषण प्रारंभ हो जाता है । कुछ रासायन रिस कर नीचे चले जाते हैं तथा भूमिगत जल को प्रदूषित करते हैं ।

खरपतवार एवं फसलों के रोगों को दूर करने के लिए प्रयोग किये वाले कीटनाशी एवं शाकनाशी कृत्रिम रासायनों के कारण मिट्टी एवं विभिन्न इसी जाने तरह खोतों के जल तालाब, झील तथा नदियों का जल एवं भूमिगत जल का भारी प्रदूषण होता है । उदाहरण के लिए अमोनिया सल्फेट के अधिक प्रयोग के कारण मिट्टी में का सान्द्रण बढ़ता है जिस कारण मिट्टी में अम्लता बढ़ जाती है । एवं सोडियम नाइट्रेटस के अधिक प्रयोग के कारण मिट्टी में पोटेशियम एवं सान्द्र बढ़ जाता है । ये आयन स्थानान्तरित होकर वर्षा के द्वारादियों के जल एवं भूमिगत जल को प्रदूषित करते हैं । है कि नाइट्रेट का भूमि अधोगमन अति मंद गति से सम्पादित होता है । नाइट्रेट का भूमि में एक से दो मीटर की गहराई तक गमन एक वर्ष में संभव हो पाता है । इस तरह फसलों द्वारा अप्रयुक्त नाइट्रेट 50 वर्षों में सबसे नीचे स्थित जलभरे तक पहुँच जाता है । स्पष्ट है कि सतह के नीचे जहरीले रासायनों के लगातार सान्द्रण के कारण ऐसा समय तैयार हो रहा है जिसका किसी समय विस्फोट हो सकता है । इसका मानव समुदाय पर अकथनीय दुष्प्रभाव पड़ सकता है । इस स्वनिर्मित आपदा से छुटकारा मिल सकता है यदि रासायनिक खादों , कीटनाशी एवं शाकनाशी कृत्रिम रासायनों के प्रयोग में कटौती की जाए तथा कृषि क्षेत्रों में गहरी सिंचाई की जाये । ज्ञातव्य है कि गहरी सिंचाई के कारण ये जहरीले रासायन शीघ्र ही सतह पर आ सकते हैं क्योंकि गहरी सिंचाई के कारण भूमिगत जल के तल में वृद्धि होगी जिस कारण नीचे गये जहरीले रासायन भूमिगत जल के साथ ही ऊपर आ जायेंगे तथा इस जल का उपभोग करने वाले पौधों, जन्तुओं, सूक्ष्म जीवों एवं मनुष्यों पर दूरगामी प्रतिकूल प्रभाव पड़ेंगे ।

कुछ नाइट्रेटस सब्जियों मानव शरीरों में पहुँचते हैं तथा ये रसायन रासायनिक अभिक्रिया द्वारा कैंसर रोग उत्पन्न कर सकते हैं । फलों तथा खाद्यान्नों के माध्यम खेतों में रासायनिक तत्व -वर्षा के जल के साथ बहकर तालाबों, झीलों तथा नदियों में पहुँचते हैं । इस तरह इन जलभुण्डारों में रासायनिक पोषक तत्वों के लगातार भण्डारण के कारण कुछ पौधों में तेजी से वृद्धि होने लगती है ।

इस प्रक्रिया को पादप वृद्धि या पादप सुपोषण कहते हैं तथा अन्य पौधों तथा जीवों की मृत्यु हो जाती है । इस प्रक्रिया द्वारा जलभण्डारों का जल प्रदूषित हो जाता है तथा जैव ऑक्सीजन माँग पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है । भारत में हरित क्रान्ति के अर्न्तगत कृषि के प्रत्येक पक्ष में प्रगति हुई है । अधिक उत्पादन देने वाली फसलों के लिए गहरी सिंचाई की आवश्यकता होती है इस हेतू नहरों का अधिक विकास किया गया है । नहरों द्वारा सिंचाई करने से एक तरफ तो कृषि उत्पादन में आशातीत वृद्धि हुई है परन्तु दूसरी तरफ जल भराव के कारण लवणीकरण तथा क्षारीयकरण की समस्यायें उत्पन्न हुई है । कारण विस्तृत कृषि क्षेत्र ऊसर एवं बजर हो गये हैं । नहरों द्वारा सिंचाई उपजाऊ भूमि के बंजर एवं अनुत्पादक भूमि में परिवर्तन की प्रक्रिया, को कसरीकरण कहते हैं । राजस्थान में इन्दिरा नहर द्वारा गहरी सिचाई के कारण जलभराव होने से विस्तृत कृषि क्षेत्र लवणीकरण द्वारा दुष्प्रभावित हुआ है ।

5. रासायनिक खाद एवं कीटनाशक का विपरीत प्रभाव :

फसली की पैदावार की उत्पादकता बढ़ाने के लिये पहले मनुष्य पारम्परिक का प्रयोग करता था जिसमें प्रधानतः गोबर कम्पोस्ट खाद, विभिन्न प्रकार की खली तथा हरी खाद का स्थान प्रमुख था । दूसरी ओर फसलों को कीड़े मकोड़ो से बचाने के लिये कीटनाशी दवाओं का प्रयोग अधाधुंध होने लगा जिससे वातावरण में पाये जाने वाले अन्य लाभकारी कीड़े भी समाप्त होने लगे । इसके उपयोग के दुष्परिणाम देखे जा रहे हैं, जैसे वातावरण का प्रदूषित होना लाभदायक कीड़ो का नाश हानिकारक कीड़ों में प्रतिरोधक क्षमता का विकास, खाद्य पदार्थों में जहर का अवशेष तथा पौधा संरक्षण कार्यकर्ताओं पर विष का प्रभाव इत्यादि । कीट पतंगों से फसलों की रक्षा के लिए फसल चक्र, खुली खेतों के जुताई तथा ग्रीष्मकाल में खेत को खुला छोडना आवश्यक माना जाता था, क्योंकि इन प्रक्रियाओं से गुजरने पर भूमि का तल कीट रहित बन जाता था । कृषि व्यवसायरत लोगों को पशुपालन करना भी आवश्यक होता था । कृषि से ही पशुओं को चारा खाद्यान्न एवं तेलों की उपलब्धता होती थी । इसलिए कृषि एवं पशुपालन दोनों ही एक दूसरे के पूरक थे ।

पशुओं से प्राप्त होने वाला गोबर तथा उनका मलमूत्र कृषि मृदा के उपजाऊपन हेतु बड़ा ही आवश्यक था । इन सब कारणों से पर्यावरण रक्षण होता रहता था जो आज प्रदूषक बन गए हैं । हरित क्रान्ति के उपरान्त तथा बढ़ती आबादी के दबाव के कारण खाद्यान्न संकट से उबरने हेतु आज हमारी कृषि रसायनिक खादों तथा कीटनाशकों के प्रयोग की चपेट में आ चुकी है । किसान कीटपतंगों के विनाश हेतु कीटनाशकों का अंधाधुंध प्रयोग करते हैं । इन कीट नाशकों में प्रमुख कीटनाशक निम्न हैं । एण्डो सल्फान, एल्डी कार्बन फोरेट, लिन्डेन, मोनोक्रोटोमिडॉन एल्ड्रिन, डी. डी. टी. ई. डी. बी. बी. एच. इत्यादि । इसके अतिरिक्त हजारों की संख्या में कीटनाशक तैयार किए जाते हैं जिनका दुष्परिणाम खेतों से लेंकर घर तक दिखलाई पड़ता है । घर में खटमल, चूहेकॉकरोच ., मच्छर, तथा अन्य कार्यों हेतु जैसे घर की सफाई , अनाज भण्डारण के लिए रोजाना कीट नाशकों का प्रयोग किया जाता है । इन कीट नाशक के प्रभाव से अन्न, जल सब्जी, फल दूध तथा अन्य वस्तुए भी सुरक्षित नहीं इसके अलावे कीटनाशक सांस के द्वारा तथा त्वचा द्वारा अवशोषित होकर भी शरीर के अन्दर पहुंच रहे है ।

डी डी टी जैसे कीटनाशकों को खेतों में प्रयोग करने पर पाबन्दी, लेकिन फिर भी इसका प्रयोग अधिक मात्रा में किया जा रहा है । भारत में प्रयोग होने वाले कीटनाशकों में से लगभग 70 प्रतिशत ऐसे , जिनके प्रयोग पर परदेश में प्रति लगा दिया है । इसमें से अधिकतर को अधिक विषेला हानिकारक मानते हुए विश्व स्वास्थ्य संगठन ने प्रतिबन्ध लगाया है जैसे एन. एनन फास्ट इत्यादि कीटनाशकों से दुर्घटनाओं के मामले में विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा तैयार सूची में भारत का स्थान तृतीय है ।

दुर्घटनाओं में मरने वालों की संख्या ज्ञात करना कठिन कार्य है । दुर्भाग्य इस बात का है कि मनुष्य में जहर के प्रवेश का ज्ञान बड़ी देर से प्राप्त होता है , जिसका असर पर्यावरण प्रणालियों पर अधिक देखने को मिलता है । इनमें कीट पतंगों में विनाश के साथ जल, फल, सब्जियों, अनाज, दूध सभी प्रभावित होते हैं । हमारे शरीर में इन कीटनाशकों का प्रभाव बहुत जल्द देखने को मिलता है तथा कुछ का प्रभाव बड़ी देर से ज्ञात होता है । तत्कालीन प्रभाव में बार बार जुकाम का होना । आँखों में जलन का होना - , आँखों में पानी आना, पेट दर्द, उल्टी दस्त, शरीर में खुजली, त्वचा की जलन, चक्कर आना, सिर दर्द जैसे लक्षण उभरते हैं । परन्तु इसके दीर्घकालिक प्रभाव अधिक घातक एवं गंभीर होते हैं । शारीरिक विकृतियों , साँस व हृदय की बीमारी, फेंफड़ों के रोग, उच्च रक्तचाप, बाँझपन तथा कैंसर की बीमारी को दीर्घकालीन प्रभाव के अर्न्तगत समाविष्ट किया गया है । आरगेनोक्लोरीज श्रेणी में आने वाले रसायन हमारे स्वास्थ्य के लिए अधिक हानिकारक हैं । मुख्य रूप से डी. डी. टी. तथा बी० एच० सी० इस श्रेणी में आते हैं । ये कीटनाशक गर्भवती महिलाओं को सबसे अधिक प्रभावित करते हैं ।

मलेरिया उन्मूलन अभियान जैसे स्वास्थ्य कार्यक्रमों में इनकी भूमिका बहुत महत्वपूर्ण रही है , जिसका प्रयोग व्यापक स्तर पर किया गया है । इसका प्रयोग तो मच्छरों का सफाया करने के उद्देश्य से किया गया, पर यह आश्चार्यपूर्ण बात है कि 50 से अधिक मच्छरों की प्रजातियों पर इसका प्रभावहीन असर पाया गया है । कीटनाशकों पर पाबन्दियों के बाद भी इनका उत्पादन घटने के स्थान पर बढ़ गया है । कृषि मंत्रालय की एक रिपोर्ट के अनुसार द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद कीटनाशकों एवं रसायनिक खादों के प्रयोग से फसलों के उत्पादन में आशा के अनुसार उत्पादन तो बढ़ा है लेकिन पर्यावरण प्रदूषण का विस्तार भी कम नहीं हुआ है । इसके अत्यधिक प्रयोग के कारण मनुष्यों, पशुओं तथा अन्य प्राणियों को अधिक हानि रही है । कीटनाशकों एवं रासायानिक खाद के प्रयोग के बाद इनके रसायन कुछ तो मृदा में घुस जाते हैं तथा कुछ बरसात के पानी के साथ बह कर नदी नाले तथा वालाबों में पहुंच जाते हैं ।

विश्व में प्रतिवर्ष 5 लाख लोग इन कीटनाशकों का शिकार बनते हैं तथा रसायनिक खादों का प्रभाव भी जल, थल, जीव तथा वनस्पतियों को अपनी गिरफ्त में ले रहा है । वस्तुतः पहले कृषि कार्य परम्परागत साधनों द्वारा किया जाता था, पर अब अधुनिकीकरण की वजह से पर्यावरणीय एवं पारिस्थितिकी की समस्या उत्पन्न हो रही है एक प्रयोग होने से मिट्टी की उर्वरता पर ग्रहण लग गया है ।

6. निष्कर्ष :

रासायनिक खादों के प्रयोग से उर्वरताके स्थान पर ऊसरता बढ़ रही है । कृषि की अधिक पैदावार के लिए उसमें जो रसायनों एवं कीटनाशकों का प्रयोग बढ़ा है इसकी वजह से खेत का अजैविक घटक असंतुलित हो गया है आर्द्रता शक्ति के अभाव में भूमि को सिंचाई की आवश्यकता भी अधिक हुई है, जिसके कारण जल दोहन बढ़ा है यद्यपि कई नई कृषि पद्धतियों एव रासायनिक खादों के प्रयोग से उत्पादन तो बढ़ा है । लेकिन भूमि में कैल्शियम, मैग्नेशियम, एन. पी. केसल्फर तत्वों की कमी भी बढ़ी है । . इसके अलावा भूमि में मैगनीज, लोहा, ताँबा, जिंक, बोरोन आदि तत्वों में भी गिरावट दर्ज हुई है । इस प्रकार हरितक्रान्ति से कृषि उत्पादन तो बढ़ा है लेकिन रासायनिक खाद एवं कीटनाशको का विपरीत प्रभाव बड़े पैमाने पर पड़ रहा है तथा इससे जो नुकसान पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी को हो रहा है वह अपूरणीय है जिसका दुष्प्रभाव सम्पूर्ण विश्व भुगतने को मजबूर है ।

सन्दर्भ ग्रंथ :

1. गोयल, एम. के. (1995) अपना पर्यावरण, विनोद पुस्तक भण्डार ।
2. क्रिचफील्, हावर्ड जे. (1987) सामान्य जलवायु विज्ञान, मध्य प्रदेश हिन्दी अकादमी, भोपाल ।
3. जैन, पी. (1980) आर्थिक भूगोल की समीक्षा , रस्तोगी पब्लिकेशन ।
4. डा. के. वी श्रीवास्तव (1990) पर्यावरण और पारिस्थितिकी वसुन्धरा प्रकाशन गोरखपुर ।
5. मामोरिया, चतुर्भुज (1994) आर्थिक भूगोल , साहित्य भवन , आगरा ।
6. मामोरिया, चतुर्भुज, (1988) जनसंख्या भूगोल, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी भोपाल ।
7. राय, एल. एम. (1994) भारतीय कृषि समस्यायें एवं संभावनायें स्व विकास प्रकाशन पटना ।
8. मामोरिया, चतुर्भुज (1994) भारत का भूगोल, साहित्य भवन, आगरा ।
9. राव, बी. पी. (1990) पर्यावरण और पारिस्थितिकी , वसुन्धरा प्रक गोरखपर ।
10. अमर रज्जा और मेहदी सिंह (1982) संसाधन एवं संरक्षण भूगोल, प्रगति प्रकाशन मेरठ ।
11. सिंह, सविन्द्र सिंह (1991) पर्यावरण भूगोल, प्रयाग पुस्तक भवन इलाहाबाद ।
12. जगदीश एवं सिंह, काशीनाथ सिंह (1967) आर्थिक भूगोल के मूल तत्व, ज्ञानोदय गोरखपुर।
13. बलवीर सिंह (1998) जलवायु एवं समुद्र विज्ञा , केदारनाथ राम मेरठ ।
14. जाट बी.सी. गुप्ता, आ. के. एव (2001) पर्यावरण भूगोल, पंचशील प्रकाशन, जयपुर ।
15. पण्डा, बी. पी पाठक, कीर्ती (2004) जैव विविधता को क्षय होने से बचाना, भूगोल और आप, नई दिल्ली ।
16. मल्लिक, जसबीर सिंह (2004) पर्यावरण शिक्षा, सत्यम पब्लिशिंग हाउस दिल्ली ।